अब्दुल रहमान एवं अन्य

बनाम

के.एम. अनीस-उल-हक

(क्रिमिनल अपील नं. 2090-2093/2011)

नवम्बर 14, 2011

(Cyriac जोसफ और टी.एस ठाकुर, न्यायाधीश)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

धारा 195 सीआर.पी.सी. - अपीलकर्ता द्वारा सीएडब्ल्यू सेल के समक्ष शिकायत दर्ज की गई जिसमें प्रत्यर्थी पर धारा 406/34 आई.पी.सी. और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत दंडनीय अपराध करने का आरोप लगाया गया। प्रत्यर्थी द्वारा आरोप लगाया गया कि - अपीलकर्ता ने बिना किसी आधार के उसके खिलाफ आपराधिक कार्यवाही शुरू की थी और उस पर अपराध धारा 211 एवं 500 सपठित धारा 109, 114 व 34 आई.पी.सी. का झूठा आरोप लगाया था, यह जानते हुए कि ऐसी कार्यवाही या आरोप के लिए कोई उचित या वैध आधार नहीं था। पोषणीयता - अपीलकर्ता की दलील है कि धारा 195 सीआर.पी.सी. की रोक प्रत्यर्थी द्वारा दायर की गई शिकायत की ओर आकर्षित हुआ, क्योंकि कथित तौर पर उनके द्वारा किया गया अपराध अदालत में कार्यवाही के

संबंध में था, जिसे प्रत्यर्थी ने जमानत देने के लिए संपर्क किया था और संबंधित अदालत ने उसके द्वारा प्रार्थना की गई जमानत को मंजूरी दे दी थी। अपीलार्थी ने सीएडब्ल्यू सेल में जो मामला दर्ज कराया था, उसके संबंध में सत्र न्यायाधीश द्वारा की गई जमानत की कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही थी और उक्त कार्यवाही से संबंधित अपीलकर्ता द्वारा कथित तौर पर आईपीसी की धारा 211 के तहत दंडनीय अपराध किया गया था। ऐसे मामले में धारा 195 सीआर.पी.सी. में रोक निहित है। जो प्रत्यर्थी द्वारा दायर की गई शिकायत की ओर आकर्षित हुआ। इस प्रकार, प्रत्यर्थी की शिकायत कायम रखने योग्य नहीं थी। दंड संहिता, 1860 धारा 406 सपठित धारा 34- दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3 और 4।

धारा 195 सीआर.पी.सी. के दायरे पर चर्चा की गई।

अपीलकर्ता द्वारा सीएडब्ल्यू सेल के समक्ष धारा 406/34 आईपीसी और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत उसके खिलाफ आपराधिक शिकायत दर्ज कराने से व्यथित होकर, प्रत्यर्थी ने एक शिकायत दर्ज की जिसमें आरोप लगाया गया कि अपीलकर्ताओं ने भी आपराधिक कार्यवाही शुरू की थी। बिना किसी आधार के उसके खिलाफ अपराध करने का झूठा आरोप लगाया और यह जानते हुए कि ऐसी कार्यवाही या आरोप के लिए कोई उचित या वैध आधार नहीं था और इस तरह आईपीसी की धारा 109, 114 और 34 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 211 और 500 के

तहत दंडनीय अपराध किया। मजिस्ट्रेट ने माना कि आई.पी.सी. की धारा 211 और 500 के तहत दण्डनीय अपराध दिखाने के लिए पर्याप्त सामग्री थी। अपीलकर्ता ने एक आपराधिक पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी जिसे समयबाधित के रूप में खारिज कर दिया गया। इसके बाद अपीलकर्ता ने सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित शिकायत और उसके परिणामस्वरूप सभी कार्यवाहियों को रद्द करने के लिए याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने उक्त याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि चूंकि उस समय किसी भी अदालत में कोई न्यायिक कार्यवाही लंबित नहीं थी, जब प्रत्यर्थी-शिकायतकर्ता द्वारा आईपीसी की धारा 211 और 500 के तहत शिकायत दर्ज की गई थी। धारा 195 सीआर.पी.सी. में निहित रोक न ही आकर्षित नहीं हुआ था और न ही अपीलकर्ताओं को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने वाले मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता थी। उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती देते हुए तत्काल अपील दायर की गई थी।

न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए

1.1. धारा 195 सीआर.पी.सी. का एक सरल वाचन यह दर्शाता है कि किसी भी न्यायालय के लिए धारा 193 से 196 (दोनों सम्मिलित), 199, 200, 205 से 211 (दोनों सम्मिलित) और 228 के तहत दंडनीय अपराधों का संज्ञान लेने पर कानूनी रोक है, जब ऐसा अपराध कथित तौर पर किया

गया हो, या किसी भी न्यायालय में किसी भी कार्यवाही के संबंध में, उस न्यायालय की लिखित शिकायत को छोड़कर या न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा जिसे उस संबंध में प्राधिकृत किया जा सकता है, या किसी अन्य न्यायालय द्वारा जिसके वह न्यायालय अधीनस्थ है। धारा 211 आई.पी.सी. के तहत दंडनीय अपराध करने का आरोप लगाने वाली शिकायत, ''किसी भी अदालत में किसी भी कार्यवाही के संबंध मैं , केवल उस अदालत के कहने पर या उस उद्देश्य के लिए लिखित रूप से अधिकृत उस अदालत के एक अधिकारी द्वारा ही सुनवाई योग्य है या किसी अन्य न्यायालय जिसके अधीनस्थ वह न्यायालय है, प्रावधान में प्रयुक्त भाषा से बिल्कुल स्पष्ट है। यह सामान्य आधार है कि वर्तमान मामले में अपराध ''किसी भी अदालत में किसी भी कार्यवाही मैं किए जाने का आरोप नहीं है। (पैरा 7)(1041-सी-एफ)

1.2. अपीलकर्ताओं द्वारा सीएडब्ल्यू सेल में शिकायत दर्ज करने पर, प्रत्यर्थी-शिकायतकर्ता ने सत्र न्यायाधीश से अग्रिम जमानत का आदेश मांगा था और जमानत देने का आदेश वास्तव में प्रत्यर्थी के पक्ष में पारित किया गया था। दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के साथ सपठित धारा 406 आई.पी.सी. के तहत अपीलकर्ताओं द्वारा दर्ज मामले की जांच पूरी होने पर, सीआर.पी.सी. की धारा 173 के तहत आरोप पत्र दायर किया गया। उक्त अपराधों की सुनवाई के लिए सक्षम अदालत के समक्ष

दायर किया गया था जिसमें उत्तरदाताओं को नियमित जमानत पर रिहा किया गया था। हालाँकि, आरोप पत्र दाखिल करना, प्रत्यर्थी-शिकायतकर्ता द्वारा दायर शिकायत पर मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने के बाद की घटना है, यह निर्धारित करने के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं हो सकती है कि संज्ञान ठीक से लिया गया था या नहीं। फिर भी प्रश्न यह होगा कि क्या सत्र न्यायाधीश द्वारा प्रत्यर्थी को अग्रिम जमानत देना न्यायिक कार्यवाही का गठन करेगा और यदि हां, तो क्या अपीलकर्ताओं द्वारा कथित रूप से किए गए अपराध को ऐसी किसी भी कार्यवाही के संबंध में किया गया कहा जा सकता है। (पैरा 8)(941-जी-एच, 942-ए-सी)

1.3. जिस मामले के संबंध में सत्र न्यायाधीश की अदालत द्वारा जमानत की कार्यवाही की गई, वहां अपीलकर्ताओं ने सीएडब्ल्यू सेल में दायर न्यायिक कार्यवाही और उक्त कार्यवाही से संबंधित अपीलकर्ताओं द्वारा धारा 211 आई.पी.सी. के तहत दंडनीय अपराध किया गया था। ऐसी स्थिति में रोक धारा 195 सीआर.पी.सी. की ओर आकर्षित होती है। मजिस्ट्रेट और उच्च न्यायालय दोनों ही ''कमलापति त्रिवेदी और एस.के. बन्नू' के मामलों में इस न्यायालय के निर्णय पर ध्यान देने में विफल रहे और इस प्रकार लेने में गलती हुई। प्रत्यर्थी द्वारा दायर शिकायत कायम रखने योग्य थी। उच्च न्यायालय यह समझने में भी असफल रहा कि उसके समक्ष विचाराधीन वास्तविक प्रश्न यह था कि क्या जमानत की

कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही के समान थी?'' इस न्यायालय द्वारा एम.एल. सेठी के मामले में उस प्रश्न को खुला छोड़ दिया गया था, लेकिन कमलापति त्रिवेदी के मामले में इसका स्पष्ट उत्तर दिया गया था। एक बार यह माना जाता है कि जमानत की कार्यवाही मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने से पहले की न्यायिक कार्यवाही के बराबर है, इस निष्कर्ष से कोई बच नहीं सकता है कि आईपीसी की धारा 211 के तहत दंडनीय किसी भी अपराध का संज्ञान केवल अदालत में ही लिया जा सकता है। उस न्यायालय का उदाहरण, जिसकी कार्यवाही के संबंध में ऐसा किया गया था या जिसने अंततः उस मामले को निपटाया था। सक्षम न्यायालय के समक्ष सीएडब्ल्यू सेल द्वारा प्रत्यर्थी के खिलाफ पहले ही आरोप पत्र दायर किया जा चुका है। इसलिए, प्रत्यर्थी को धारा 211 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराध या उक्त कार्यवाही के संबंध में या उचित चरण में किए गए किसी अन्य अपराध के लिए अपीलकर्ताओं के खिलाफ शिकायत दर्ज करने के लिए उक्त न्यायालय में जाने का अधिकार होगा। कहने की जरूरत नहीं है कि यदि प्रत्यर्थी द्वारा वास्तव में संबंधित न्यायालय में कोई आवेदन किया जाता है, तो उससे संहिता की धारा 340 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए उस पर उचित आदेश पारित करने की उम्मीद की जाती है। जब तक उक्त कार्यवाही सक्षम न्यायालय के समक्ष लंबित है, वहां धारा 211

आई.पी.सी. के अभियोजन के लिए समानांतर कार्यवाही की अनुमति देना कानूनी रूप से उचित नहीं होगा। (पैरा 14, 15)(1047-बी-एच, 1048-ए-बी)

कमलापति त्रिवेदी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 1980 (2) एससीसी 91: 1979 (2) एससीआर 717, महाराष्ट्र राज्य बनाम एस.के. बन्नू और शंकर (1980) 4 एससीसी 286: 1981 (1) एससीआर 694, एम.एल. सेठी बनाम आर.पी. कपूर एआईआर 1967 एससी 528: 1967 एससीआर 520 पर भरोसा किया गया।

2. प्रत्यर्थियों को आईपीसी की धारा 500 के तहत दंडनीय अपराध के लिए अपीलकर्ताओं के खिलाफ अभियोजन जारी रखने की अनुमति देने से न्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होगा और इसके परिणामस्वरूप अपीलकर्ताओं को एक ही तथ्य पर दो बार परेशान होना पड़ सकता है। यदि पहले से दर्ज शिकायत रद्द कर दी जाती है तो आईपीसी की धारा 500 के तहत कोई भी शिकायत कालबाधित हो सकती है। यह कोई बड़ी कठिनाई नहीं है। इसका समाधान किया जा सकता है। यह उचित होगा यदि मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेशों और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को रद्द कर दिया जाए और प्रत्यर्थी द्वारा दायर शिकायत को प्रत्यर्थी के खिलाफ दायर आरोप पत्र से निपटने वाले न्यायालय में स्थानांतरित करने का निर्देश दिया जाए। उक्त अदालत शिकायत को आईपीसी की धारा 211 के तहत शिकायत दर्ज करने के लिए एक आवेदन के रूप में मानेगी, जिस

पर विचार किया जाएगा और मुकदमे के अंतिम निष्कर्ष पर निपटारा किया जाएगा। आईपीसी की धारा 340 के प्रावधानों और प्रत्यर्थी के अपराध या निर्दोषता के संबंध में निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए उसके खिलाफ मामला दर्ज किया जा सकता है। प्रत्यर्थी को शिकायत के साथ आगे बढ़ने की भी स्वतंत्रता होगी, जहां तक मामला आईपीसी की धारा 500 के तहत दंडनीय अपराध के कमीशन से संबंधित है, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि अदालत के निष्कर्षों के आलोक में ऐसा करने की कोई गुंजाइश है या नहीं। प्रत्यर्थी के विरुद्ध मुकदमे के समापन पर रिकॉर्ड किया जा सकता है। (पैरा 16)(1048-जी-एच, 1049-ए-सी)

बद्री बनाम राज्य आईएलआर (1963) 2 सभी 359- संदर्भित।

केस कानून सन्दर्भ

1967 एससीआर 520	निर्भर	पैरा 4, 9, 14
आईएलआर (1963) 2 सभी 359	उल्लिखित	पैरा 9
1979 (2) एससीआर 717	निर्भर	पैरा 11, 14
1981 (1) एससीआर 694	निर्भर	पैरा 13, 14

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार- आपराधिक अपील नं. 2090-2093/2011 ।

दिल्ली उच्च न्यायालय के क्रिमिनल मिस. नं. 4183-86/2006 में दिनांक 26.02.2008 के निर्णय और आदेश से।

चन्द्र शेखर, सौरभ उपाध्याय, मेघना डी, एस.के. वर्मा - अपीलकर्ताओं की ओर से

टी.एस. डोबिआ, साधना संधु, प्रियंका माथुर सरदाना, अनिल कटियार, पी.डी. शर्मा, डाॅ. अलोक के. शर्मा - प्रत्यर्थी की ओर से

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

टी.एस. ठाकुर न्यायाधीश - छुट्टी स्वीकृत,

2. इन अपीलों में निर्धारण के लिए संक्षिप्त प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या प्रत्यर्थी-शिकायतकर्ता द्वारा अपीलकर्ताओं के खिलाफ दायर की गई शिकायत, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 211, 500, 109, 114 भारतीय दण्ड संहिता, 1860 के तहत दण्डनीय अपराध करने के आरोपों को दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 195 के प्रावधानों द्वारा वर्जित किया गया था। दिल्ली उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं द्वारा दायर सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत याचिका को खारिज करते हुए कहा कि विचाराधीन शिकायत वर्जित नहीं है और मेट्रोपाॅलिटन मजिस्ट्रेट, दिल्ली ने आई.पी.सी. की धारा 211 और 500 के तहत दण्डनीय अपराध का संज्ञान लेने में कानून या अधिकार क्षेत्र में कोई त्रुटि नहीं की। उपरोक्त शिकायत में जो अपीलकर्ता आरोपी व्यक्ति हैं, उन्होंने विशेष अनुमति द्वारा

वर्तमान अपील में उक्त निष्कर्ष पर अपील की है। अपीलकर्ताओं का तर्क है कि सीआर.पी.सी. की धारा 195 में निहित रोक प्रत्यर्थी द्वारा दायर की गई शिकायत पर आकर्षित होती है, क्योंकि उनके द्वारा कथित तौर पर किया गया अपराध अदालत में ''कार्यवाहियों के सम्बन्ध में था, जिसके लिए प्रत्यर्थी/शिकायतकर्ता ने सम्पर्क किया था। जमानत के आवेदन और जिसमें सम्बन्धित अदालत ने उसके द्वारा प्रार्थना की गई जमानत को मंजूरी दे दी। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 195(1)(बी)(प) में प्रदर्शित अभिव्यक्ति ''किसी भी अदालत में किसी भी कार्यवाही के सम्बन्ध में का वास्तविक उद्देश्य क्या है और विशेष रूप से क्या प्रत्यर्थी को जमानत दी गई है, जिसमें उसके खिलाफ दर्ज की गई एफ.आई.आर. के सम्बन्ध में सीआर.पी.सी. की धारा 195 में निहित प्रतिबंध को आकर्षित किया जाएगा, जो कि निर्धारण का विषय है। इससे पहले कि हम सीआर.पी.सी. की धारा 195 के प्रावधानों पर ध्यान दें। संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं -

3. अपीलकर्ता अब्दुल रहमान ने महिलाओं के खिलाफ अपराध (सीएडब्ल्यू) सेल, नानकपुरा, मोतीबाग, नई दिल्ली में शिकायत दर्ज कराई, जिसमें प्रत्यर्थी के.एम. अनीस-उल-हक और चार अन्य पर धारा 406 के साथ आई.पी.सी. की धारा 34 और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत दण्डनीय अपराध करने का आरोप लगाया गया।

शिकायतकर्ता का मामला यह है कि महिला सेल में दर्ज रिपोर्ट में अपीलकर्ता द्वारा लगाए गए आरोप पूरी तरह से झुठे और मनघढ़ंत थे। विशेष रूप से इस अपील में शिकायतकर्ता के भतीजे और सुश्री आलिया अपीलकर्ता नम्बर 3 के बीच निकाह के लिए एक शर्त के रूप में दहेज की मांग के आरोप भी झुठे और निराधार थे। इसी आधार पर प्रत्यर्थी ने यह आरोप लगाते हुए शिकायत दर्ज की थी कि अपीलकर्ताओं ने बिना किसी आधार के उसके खिलाफ आपराधिक कार्यवाही शुरू की थी और यह जानते हुए भी कि ऐसी कार्यवाही या आरोप के लिए कोई उचित या वैध आधार नहीं था, उस पर अपराध करने का झुठा आरोप लगाया और इस तरह आई.पी.सी. की धारा 109, 114 और 34 के साथ पठित धारा 211 और 500 के तहत दण्डनीय अपराध किया।

4. मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट ने शिकायत पर विचार किया, प्रत्यर्थी द्वारा पेश किए गए तीन गवाहों के बयान दर्ज किए और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आई.पी.सी. की धारा 211 और 500 के तहत दण्डनीय अपराध के लिए पर्याप्त सामग्री थी। ऐसा करते समय मजिस्ट्रेट ने एम.एल. सेठी बनाम आर.पी. कपूर (ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 528) में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया कि आई.पी.सी. की धारा 211 के तहत दण्डनीय अपराध की शिकायत जांच के चरण में व प्रथम सूचना रिपोर्ट में भी कायम रखने योग्य है।

5. मेट्रोपाॅलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, नई दिल्ली के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया, जिन्होंने इसे सीमा से वर्जित मानते हुए खारिज कर दिया। इसके बाद अपीलकर्ता ने मेट्रोपाॅलिटन मजिस्ट्रेट के समक्ष लम्बित 2002 की शिकायत संख्या 180/1 और उसके परिणामस्वरूप सभी कार्यवाहियों को रद्द करने के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत एक याचिका दायर की। जैसा कि उपर उल्लेख किया गया हे, उच्च न्यायालय ने उक्त याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया है कि चूंकि उस समय किसी भी न्यायालय में कोई न्यायिक कार्यवाही लम्बित नहीं थी, जब प्रत्यर्थी/शिकायतकर्ता द्वारा आई.पी.सी. की धारा 211 और 500 के तहत शिकायत दर्ज की गई थी। अपीलकर्ताओं को मुकदमें का सामना करने के लिए बुलाने वाले मेट्रोपाॅलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में धारा 195 सीआर.पी.सी. में निहित रोक शामिल नहीं थी और न ही कोई अवैधता थी।

6. हमने पक्षों के विद्वान वकीलों को काफी विस्तार से सुना है और चुनौती के तहत आदेश का अध्ययन किया है। सीआर.पी.सी. की धारा 195 की हद तक प्रासंगिक है। धारा 195 सीआर.पी.सी. के अनुसार - लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों के लिए और साक्ष्य में दिए गए दस्तावेजों से संबंधित अपराधों के लिए लोक सेवकों के विधिपूर्ण प्राधिकार के अवमान के

लिए अभियोजन (1) कोई न्यायालय - (क) (i) भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 172 से धारा 188 तक की धाराओं के (जिनके अन्तर्गत ये दोनों धाराएँ भी है) अधीन दण्डनीय किसी अपराध का, अथवा

(ii) ऐसे अपराध के किसी दुष्प्रेरण या ऐसा असर करने के प्रयत्न का

अथवा (iii) ऐसा अपराध करने के लिए किसी आपराधिक षड़यंत्र का संज्ञान संबद्ध लोक सेवक के, या किसी अन्य ऐसे लोक-सेवक के, जिसके वह प्रशासनिक तौर पर अधीनस्थ है, लिखित परिवाद पर ही करेगा, अन्यथा नहीं।

(ख) (i) भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की निम्नलिखित धाराओं अर्थात् 193 मे 196 (जिसके अन्तर्गत ये दोनों धाराएं भी है), 199, 200, 205 से 211 (जिनके अन्तर्गत दोनों धाराएँ भी हैं) और 228 में से किन्हीं के अधीन दण्डनीय किसी का जब ऐसे अपराध के बारे में यह अभिकथित है कि वह किसी न्यायालय में की कार्यवाही में या उसके संबंध में किया है, अथवा (ii) उसी संहिता की धारा 463 में वर्णित या धारा 471, धारा 475 या धारा 476 के अधीन दण्डनीय अपराध का, जब ऐसे अपराध के बारे में यह अभिकधित है कि वह किसी न्यायालय में की कार्यवाही में पेश की गई साक्ष्य में दी गई किसी दस्तावेज के बारे में किया गया है, अथवा (iii) उपखण्ड (i) या उपखण्ड (ii) में विनिर्दिष्ट किसी अपराध को करने के लिए आपराधिक षड़यंत्र या उसे करने के प्रयत्न या उसके दुष्प्रेरण

के अपराध का संज्ञान ऐसे न्यायालय के, या ऐसे न्यायालय के ऐसे अधिकारी, जिसे वह न्यायालय इस निमित लिखित रूप में प्राधिकृत करे, या किसी अन्य न्यायालय के, जिसके यह न्यायालय अधीनस्थ है, लिखित परिवाद पर ही करेगा अन्यथा नहीं।

(2) जहाँ किसी लोक-सेवक द्वारा उपधारा (1) के खण्ड (क) के अधीन कोई परिवाद किया गया है वहाँ ऐसा कोई प्राधिकारी, जिसके वह प्रशासनिक तौर पर अधीनस्थ है, उस परिवाद को वापस लेने का आदेश दे सकता है और ऐसे आदेश की प्रति न्यायालय को भेजेगा और न्यायालय द्वारा उसकी प्राप्ति पर उस परिवाद के संबंध में आगे कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी। परन्तु ऐसे वापस लेने का कोई आदेश उस दशा में नहीं दिया जाएगा जिसमें विचारण प्रथम बार के न्यायालय में समान हो चुका है।

(3) उपधारा (1) के खण्ड (ख) में ''न्यायालय'' शब्द से कोई सिविल, राजस्व या दण्ड न्यायालय अभिप्रेत है और उसके अन्तर्गत किसी केन्द्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधीन गठित कोई अधिकरण भी है। यदि वह उस अधिनियन द्वारा इस धारा के प्रयोजनार्थ न्यायालय घोषित किया गया है।

(4) उपधारा (1) के खण्ड (ख) के प्रयोजनों के लिए कोई न्यायालय उस न्यायालय के जिसमें ऐसे पूर्वकथित न्यायालय की अपीलनीय डिक्रियों या दण्डादेशों की साधारणतया अपील होती है, अधीनस्थ समझा जाएगा या

ऐसा सिविल न्यायालय, जिसकी डिक्रियों की साधारणतया कोई अपील नहीं होती है, उस मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता वाले प्रधान न्यायालय के अधीनस्थ समझा जाएगा जिसकी स्थानीय अधिकारिता के अन्दर ऐसा सिविल न्यायालय स्थित है परन्तु- (क) जहाँ अपीलें एक से अधिक न्यायालय में होती हैं वहाँ अवर अधिकारिता वाला अपील न्यायालय वह न्यायालय होगा जिसके अधीनस्थ ऐसा न्यायालय समझा जाएगा, (ख) जहां अपीलें सिविल न्यायालय में और राजस्व न्यायालय में भी होती है, वहां ऐसा न्यायालय उस मामले या कार्यवाही के स्वरूप के अनुसार, जिसके सम्बन्ध में उस अपराध का किया जाना अभिकथित है, सिविल या राजस्व न्यायालय के अधीनस्थ समझा जाएगा।

7. उपरोक्त को स्पष्ट रूप से पढ़ने से पता चलता है कि किसी भी न्यायालय के लिए धारा 193 से 196 (दोनों सम्मिलित), 199, 200, 205 से 211 (दोनों सम्मिलित) और 228 के तहत दण्डनीय अपराधों का संज्ञान लेने पर कानूनी रोक है। यह आरोप लगाया गया है कि किसी भी न्यायालय में किसी भी कार्यवाही के सम्बन्ध में, उस न्यायालय की लिखित शिकायत के अलावा या उस न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा, जिसे उस सम्बन्ध में अधिकृत किया जा सकता है, या किसी अन्य न्यायालय द्वारा किया गया है, वह न्यायालय अधीनस्थ है। आई.पी.सी. की धारा 211 के तहत दण्डनीय अपराध करने का आरोप लगाने वाली

शिकायत, ‘‘किसी भी अदालत में किसी भी कार्यवाही के सम्बन्ध में , केवल उस अदालत के कहने पर या उस उद्देश्य के लिए लिखित रूप से अधिकृत उस अदालत के एक अधिकारी द्वारा ही सुनवाई योग्य है या किसी अन्य न्यायालय जिसके अधीनस्थ वह न्यायालय है, प्रावधान में प्रयुक्त भाषा से बिल्कुल स्पष्ट है। यह सामान्य आधार है कि वर्तमान मामले में अपराध ‘‘किसी भी अदालत में किसी भी कार्यवाही में किए जाने का आरोप नहीं है। ऐसा होने पर सवाल यह है कि क्या अपीलकर्ताओं के खिलाफ कथित अपराध को‘‘

में किया गया कहा जा सकता है।

8. यह विवादित नहीं है कि अपीलकर्ताओं द्वारा सी.ए.डब्ल्यू. सेल में शिकायत दर्ज करने पर प्रत्यर्थी/शिकायतकर्ता ने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कड़कड़डूमा, दिल्ली से अग्रिम जमानत का आदेश मांगा था, न ही यह विवादित है कि एक आदेश प्रत्यर्थी के पक्ष में जमानत का आदेश दिया गया था। यह भी विवाद में नहीं है कि दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के साथ पठित धारा 406 के तहत अपीलकर्ताओं द्वारा दर्ज मामले की जांच पूरी होने पर, सीआर.पी.सी. की धारा 173 के तहत एक आरोप-पत्र सक्षम न्यायालय के समक्ष पहले ही दायर किया जा चुका है। उक्त धाराओं की सुनवाई के लिए जिसमें उत्तरदाताओं को दस हजार रूपये की राशि और इतनी ही राशि की जमानत पर नियमित जमानत पर रिहा

किया गया है। हालांकि, आरोप-पत्र दाखिल करना प्रत्यर्थी/शिकायतकर्ता द्वारा दायर शिकायत पर मेट्रोपाॅलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने के बाद की घटना है, इसलिए यह निर्धारित करने के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं हो सकती है कि संज्ञान ठीन से लिया गया था या नहीं। फिर भी सवाल यह होगा कि क्या अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कड़कड़डूमा कोर्ट, दिल्ली द्वारा प्रत्यर्थी को अग्रिम जमानत देना न्यायिक कार्यवाही का गठन करेगा और यदि हां, तो क्या अपीलकर्ताओं द्वारा कथित रूप से किया गया अपराध ऐसी किसी भी कार्यवाही के सम्बन्ध में प्रतिबद्ध कहा जा सकता है।

9. यह प्रश्न कि क्या जमानत देने पर सीआर.पी.सी. की धारा 195(1)(बी)(i) में निहित प्रतिबंध लागू होगा, अब प्रासंगिक नहीं रह गया है। बद्री बनाम राज्य (आई.एल.आर. 1963 2 सभी 359) में आई.पी.सी. की धारा 211 के तहत दण्डनीय अपराध का आरोप था कि शिकायतकर्ता और अन्य लोगों के खिलाफ पुलिस को झुठी रिपोर्ट देने वाले व्यक्ति द्वारा किया गया था। यह माना गया कि उक्त अपराध रिमाण्ड कार्यवाही और जमानत कार्यवाही के सम्बन्ध में किया गया था, जो बाद में पुलिस को दी गई रिपोर्ट के सम्बन्ध में मजिस्ट्रेट के समक्ष लिया गया था और इसलिए मामला धारा 195(1)(बी) द्वारा शासितथा। सीआर.पी.सी. की धारा 340 के साथ पठित धारा 195 के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा शिकायत के अलावा कोई संज्ञान नहीं लिया जा सकता है। उक्त निर्णय एम.एल. सेठी बनाम आर.पी.

कपूर (ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 528) मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष विचार के लिए आया था, लेकिन इस अदालत ने इस सवाल को खुला छोड़ दिया कि क्या मजिस्ट्रेट के समक्ष रिमाण्ड और जमानत की कार्यवाही एक अदालत में कार्यवाही का गठन करेगी। इस न्यायालय ने कहा - ''हम इस पर कोई राय व्यक्त करना आवश्यक नहीं समझते हैं कि क्या मजिस्ट्रेट के समक्ष रिमाण्ड और जमानत की कार्यवाही को अदालत में कार्यवाही माना जा सकता है और न ही हमें इस सवाल पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या झुठी रिपोर्ट बनाने का आरोप सही ठहराया जा सकता है, उन कार्यवाहियों के सम्बन्ध में हो। उस पहलू में हमें हिरासत में लेने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमारे सामने वाले मामले में तथ्य अलग है।''

10. पुलिस के समक्ष दर्ज की गई झुठी शिकायत के सन्दर्भ में आई.पी.सी. की धारा 211 के तहत शिकायत की रखरखाव के सम्बन्ध में कानूनी स्थिति निम्नलिखित शब्दों में बताई गई है - ''परिणामस्वरूप, जब तक किसी मजिस्ट्रेट के लिए पुलिस द्वारा किसी संज्ञेय अपराध की जांच के सम्बन्ध में न्यायिक आदेश देने का कोई अवसर नहीं आता, तब तक मजिस्ट्रेट के पास धारा 195(1)(बी) सीआर.पी.सी. के तहत शिकायत दर्ज करने की शक्ति होने पर कोई सवाल नहीं उठ सकता है। ऐसी परिस्थितियों में यदि कोई निजी व्यक्ति पुलिस को दी गई जानकारी से व्यथित होकर

मजिस्ट्रेट द्वारा न्यायिक आदेश दिए जाने से पहले किसी भी स्तर पर धारा 211 आई.पी.सी. के तहत अपराध करने की शिकायत दर्ज करता है, जिस तिथि को न्यायालय द्वारा उस शिकायत का संज्ञान लिया जाता है, उस पर धारा 195(1)(बी) सीआर.पी.सी. के प्रावधानों के लागू होने पर कोई प्रश्न नहीं हो सकता है, क्योंकि उस तिथि पर किसी भी मामले में कोई कार्यवाही नहीं होगी। न्यायालय जिसके सम्बन्ध में आई.पी.सी. की धारा 211 के सम्बन्ध में अस्तित्व में है, कहा जा सकता है कि यह घटित हुआ है। केवल तथ्य यह है कि किसी संज्ञेय अपराध की पुलिस को रिपोर्ट करने पर कार्यवाही कुछ बाद के चरण में और न्यायिक आदेश में होनी चाहिए इसलिए एक मजिस्ट्रेट द्वारा निजी शिकायत दायर करने और उसके आधार पर न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने के रास्ते में नहीं खड़ा हो सकता है।"

11. धारा 195(1)(बी)(i) सीआर.पी.सी. के अर्थ के अन्तर्गत न्यायालय के समक्ष जमानत की कार्यवाही के सम्बन्ध में प्रश्न एक बार फिर कमलापति त्रिवेदी बनाम पश्चिम बंगा राज्य (1980 (2) एससीसी 91) उस मामले में कमलापति त्रिवेदी ने सत्यनारायण पाठक समेत छह लोगों के खिलाफ आई.पी.सी. की धारा 147, 448 और 379 के तहत शिकायत दर्ज कराई थी। आरोपियों की गिरफतारी के लिए वारण्ट जारी किए गए थे, जिनमें से सभी ने हावड़ा के उप-विभागीय न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया, जिन्होंने उन्हें जमानत पर रिहा करने

का आदेश पारित किया। उचित समय पर पुलिस ने जांच पूरी की और सीआर.पी.सी. की धारा 173 के तहत एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें कहा गया कि श्री त्रिवेदी द्वारा दर्ज की गई शिकायत झुठी थी। मजिस्ट्रेट रिपोर्ट से सहमत हुए और आरोपी को आरोप मुक्त करने का आदेश पारित किया। मजिस्ट्रेट द्वारा दिए गए डिस्चार्ज आदेश के कुछ समय बाद श्री पाठक जो अपराध करने के आरोपी व्यक्तियों में से एक थे, ने एस.डी.जे.एम. के समक्ष एक शिकायत दर्ज की, जिसमें कमलापति त्रिवेदी पर आई.पी.सी. की धारा 211 और 182 के तहत दण्डनीय अपराध करने का आरोप लगाया गया। बाद वाले ने पुलिस में झुठी शिकायत दर्ज कराई। त्रिवेदी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका दायर की, जिसमें संहिता की धारा 195(1)(बी)(आई) में निहित रोक के मद्देनजर मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना की गई। उस प्रार्थना को उच्च न्यायालय ने अस्वीकार कर दिया, जिसने यह विचार किया कि न्यायालय के समक्ष आपराधिक कार्यवाही केवल तभी आपराधिक कार्यवाही बनती है, जब संज्ञान लिया गया हो, पहले नहीं और चूंकि न्यायालय के समक्ष कोई कार्यवाही लम्बित नहीं थी, इसलिए धारा 195(1)(बी)(आई) सीआर.पी.सी. के प्रावधान आकर्षित नहीं थे। अपील में इस न्यायालय ने निम्नलिखित दो प्रश्न तैयार किए - "33. इसलिए निर्धारण की आवश्यकता वाले बिन्दु हैं: "(ए) क्या एसडीजेएम ने 6 मई, 1970 और 31 जुलाई, 1970 या उनमें से किसी को

आदेश पारित करते समय न्यायालय के रूप में कार्य किया था ? (बी) यदि प्रश्न (ए) का उत्तर सकारात्मक है, तो क्या भारतीय दण्ड संहिता की धारा 211 के तहत त्रिवेदी को उक्त दोनों में से किसी एक या दोनों में समाप्त होने वाली कार्यवाही के सम्बन्ध में किया गया अपराध के लिए जिम्मेदार माना जा सकता है? आदेश?''

12. प्रश्नों का सकारात्मक उत्तर देते हुए इस न्यायालय ने कहा:

> ''60. चूंकि त्रिवेदी को जमानत पर रिहा करने का आदेश और अंततः उन्हें अपराध से मुक्त करने का आदेश एक अदालत के समक्ष कार्यवाही के बराबर है, यह देखना बाकी है कि क्या यह भारतीय दण्ड संहिता की धारा 211 के तहत अपराध है, जो विषय है। त्रिवेदी के खिलाफ शिकायत के मामले को ''उन कार्यवाहियों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। दोनों आदेश सीधे त्रिवेदी द्वारा पाठक के खिलाफ पुलिस में दर्ज की गई जानकारी के परिणामस्वरूप हुए और इस स्थिति में निष्कर्ष से बाहर निकलना सम्भव नहीं है। उक्त अपराध को उन कार्यवाहियों के सम्बन्ध में किया गया अपराध माना जाना चाहिए। इसलिए उपरोक्त खण्ड (बी) की यह आवश्यकता भी पूरी तरह से संतुष्ट है।

61. बताए गए कारणों से, मेरा मानना है कि त्रिवेदी के खिलाफ शिकायत अदालत में कार्यवाही के सम्बन्ध में किए गए कथित अपराध के सम्बन्ध में है और इसका संज्ञान लेते हुए एसडीजेएम ने इसमें निहित खण्ड (बी) का उल्लंघन किया है। क्योंकि एसडीजेएम या वरिष्ठ न्यायालय को लिखित रूप में कोई शिकायत नहीं थी। परिणामस्वरूप, मैं अपील स्वीकार करता हूं और उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करते हुए त्रिवेदी के खिलाफ एसडीजेएम द्वारा की गई कार्यवाही को रद्द करता हूं।"

13. उपरोक्त दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा महाराष्ट्र राज्य बनाम एस.के. में दोहराया गया था। बन्नु और शंकर (1980 (4) एससीसी 286) उस मामले में सवाल यह था कि क्या आई.पी.सी. की धारा 476 के तहत दण्डनीय अपराध के लिए अभियोजन स्थानान्तरित अदालत के कहने पर उस मामले में दर्ज किया जा सकता है, जहां अपराध दूसरे न्यायालय में किया गया था, जो पहले उक्त कार्यवाही के एक अलग चरण से निपट रहा था। इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हुए इस न्यायालय ने माना कि दो कार्यवाहियां अर्थात् एक जिसमें अपराध किया गया था और दूसरी जिसमें अंतिम आदेश दिया गया है, वास्तव में, एक ही एकीकृत न्यायिक प्रक्रिया के विभिन्न चरण हैं और इसमें अपराध किया गया है। उक्त कार्यवाही के

पहले वाले को उस न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के सम्बन्ध में किया गया अपराध कहा जा सकता है, जिसे मामला बाद में स्थानान्तरित किया गया था या जिस न्यायालय ने अन्ततः मामले की सुनवाई की थी। आगे यह माना गया कि मजिस्ट्रेट के समक्ष जमानत की कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही थी, भले ही ऐसी कार्यवाही उस चरण में हुई थी, जब अभियुक्तों के खिलाफ अपराध, जिन्हें जमानत दी गई थी, पुलिस जांच के अधीन थी। इस न्यायालय ने कहा:-

"16. यह वास्तविक स्थिति है, श्री देशपांडे के समक्ष जमानत की कार्यवाही और श्री करंदीकर के समर्थ अभियोजन के लिए पुलिस द्वारा चालान की प्रस्तुति के साथ शुरू होने वाली बाद की कार्यवाह देवलाल किशन को अलग कार्यवाही के रूप में नहीं बल्कि एक ही न्यायिक प्रक्रिया के और भागों के रूप में देखा है। न तो जमानत के आदेश और चालान के बीच समय अंतरात, न ही चालान पेश होने पर मामला श्री देशपांडे को चिह्नित किया गया था लेकिन संहिता की धारा 192 तहत श्री करंदीकर को स्थानान्तरित कर दिया गया था इससे पहले और बाद की कार्यवाही में एक ही अभिन्न संपूर्ण के हिस्से या चरण होने पर कोई फर्क पड़ेगा। वास्तव में धारा 205 सीआर.पी.सी. धारा 419, 465, 467 और 471 तभी प्रकाश में आई जब श्री करंदीकर ने प्रश्नगत जाली जमानत बांड के आधार पर अभियुक्तों की उपस्थिति प्राप्त करने का प्रयास किया। यदि श्री देशपांडे के

समक्ष पहले की कार्यवाही और श्री करंदीकर के समक्ष बाद की कार्यवाही उसी प्रक्रिया के चरण या भाग थे - जैसा कि हम मानते है कि वे थे तो तार्किक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि उपरोक्त अपराधों को कार्यवाही के ''अंदर या उसके संबंध में किया गया कहा जा सकता है। श्री करंदीकर के न्यायालय में भी संहिता की धारा 476 के तहत कार्रवाई करने के उद्देश्य से।

21. वर्तमान मामले में इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि श्री देशपांडे के समक्ष जमानत की कार्यवाही एक अदालत के समक्ष न्यायिक कार्यवाही थी, हालांकि ऐसी कार्यवाही उस चरण में हुई थी जब आरोपी के खिलाफ अपराध जिसे जमानत मिल गई थी पुलिस जांच के अधीन थी। इस प्रकार निर्मलजीत सिंह मामले 1973 3 एससीसी 753 में तथ्य भौतिक रूप से भिन्न थे। इसलिए उस निर्णय का अनुपात हमारे सामने मौजूद मामले पर लागू नहीं होता है।

14. उपरोक्त सिद्धांतों को मामले में लागू करने पर इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ताओं ने सीएडब्ल्यू सेल में जो मामला दर्ज कराया था उसके संबंध में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश कड़कड़डूमा, दिल्ली की अदालत द्वारा की गई जमानत कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही थी और आईपीसी की धारा 211 के तहत दंडनीय अपराध उक्त कार्यवाही से संबंधित अपीलकर्ताओं द्वारा किया गया कथित अपराध है। ऐसी स्थिति में सीआर.पी.सी. की धारा

195 में निहित प्रतिबंध प्रत्यर्थी द्वारा दायर शिकायत पर स्पष्ट रूप से आकर्षित होता है। मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट और उच्च न्यायालय दोनों कमलापति त्रिवेदी और एसके के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर ध्यान देने में विफल रहे थे। बन्नू के मामले (सुप्रा) और इस प्रकार यह मानने में त्रुटि हुई कि प्रत्यर्थी द्वारा दायर की गई शिकायत कायम रखने योग्य थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय इस बात को समझने में भी विफल रहा है कि उसके समक्ष विचाराधीन वास्तविक प्रश्न यह था कि क्या जमानत की कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही के समान थी। इस न्यायालय द्वारा एमएल सेठी के मामले (सुप्रा) में उस प्रश्न को खुला छोड़ दिया गया था लेकिन कमलापति त्रिवेदी के मामले (सुप्रा) में इसका सटीक उत्तर दिया गया था। एक बार जब यह माना जाता है कि जमानत की कार्यवाही मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने के समय से पहले की न्यायिक कार्यवाही के समान है तो इस निष्कर्ष से बच नहीं सकते कि धारा 211 आईपीसी के तहत दंडनीय किसी भी अपराध का संज्ञान केवल लिया जा सकता है। उस न्यायालय के कहने पर जिसकी कार्यवाही के संबंध में ऐसा किया गया था या जिसने अंततः उस मामले को निपटाया था।

15. जैसा कि ऊपर देखा गया है सक्षम न्यायालय के समक्ष सीएडब्ल्यू सेल द्वारा प्रत्यर्थी के खिलाफ आरोप पत्र पहले ही दायर किया जा चुका है। इसलिए प्रत्यर्थी को आईपीसी की धारा 211 के तहत दंडनीय

अपराध या उक्त कार्यवाही के संबंध में या उचित चरण में किए गए किसी अन्य अपराध के लिए अपीलकर्ताओं के खिलाफ शिकायत दर्ज करने के लिए उक्त न्यायालय में जाने का अधिकार होगा। कहने की जरूरत नहीं है कि यदि प्रत्यर्थी द्वारा वास्तव में संबंधित न्यायालय में कोई आवेदन किया जाता है, तो उससे संहिता की धारा 340 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए उस पर उचित आदेश पारित करने की उम्मीद की जाती है। जब तक उक्त कार्यवाही सक्षम न्यायालय के समक्ष लंबित है तब तक आईपीसी की धारा 211 के तहत दंडनीय अपराध के लिए अपीलकर्ताओं के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए समानांतर कार्यवाही की अनुमति देना न तो उचित होगा और न ही कानूनी रूप से स्वीकार्य होगा।

16. प्रत्यर्थी के विद्वान वकील द्वारा अगली बार यह तर्क दिया गया कि हालांकि आईपीसी की धारा 211 के तहत अपराध का संज्ञान नहीं लिया जा सकता है, लेकिन जहां तक यह दंडनीय अपराध के कमीशन से संबंधित है कार्यवाही में हस्तक्षेप करने की कोई गुंजाइश नहीं है। धारा 500, चूंकि धारा 195 सीआर.पी.सी. की रोक आईपीसी की धारा 500 के तहत कार्यवाही में शामिल नहीं थी। हालांकि यह तर्क आकर्षक है लेकिन बारीकी से जांच पर खरा नहीं उतरता। प्रत्यर्थी द्वारा स्थापित मामले का सार यह है कि सीएडब्ल्यू सेल में दर्ज शिकायत में उस पर धारा 406 और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत दंडनीय अपराध का आरोप

लगाते हुए लगाए गए आरोप झूठे थे, जो प्रत्यर्थी के अनुसार समान है। आईपीसी की धारा 500 के तहत दंडनीय अपराध के अलावा धारा 211 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराध का कमीशन। हालांकि दोनों अपराधों के लिए तथ्यात्मक जानकारी एक ही है। आईपीसी की धारा 500 के तहत दंडनीय अपराध के लिए प्रतिवादियों को अपीलकर्ताओं के खिलाफ अभियोजन जारी रखने की अनुमति देना हमारी राय में न्याय के उद्देश्य को पूरा नहीं करेगा और इसके परिणामस्वरूप अपीलकर्ताओं को एक ही तथ्य पर दो बार परेशान होना पड़ सकता है। हम निस्संदेह इस तथ्य से अवगत है कि यदि पहले से दर्ज की गई शिकायत को रद्द कर दिया जाता है तो आईपीसी की धारा 500 के तहत कोई भी शिकायत कालबाधित हो सकती है। यह कोई बहुत बड़ी मुश्किल नहीं है और राहत को उपयुक्त रूप से ढालकर इसका ध्यान रखा जा सकता है। हमारी राय में यह उचित होगा यदि मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेशों और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को रद्द कर दिया जाए और प्रत्यर्थी द्वारा दायर शिकायत को प्रत्यर्थी के खिलाफ दायर आरोप पत्र से निपटने वाले न्यायालय में स्थानांतरित करने का निर्देश दिया जाए। उक्त अदालत शिकायत को आईपीसी की धारा 211 के तहत शिकायत दर्ज करने के लिए एक आवेदन के रूप में मानेगी जिस पर विचार किया जाएगा और मुकदमे के अंतिम निष्कर्ष पर निपटारा किया जाएगा। धारा 340 के प्रावधानों को ध्यान में

रखते हुए आईपीसी और प्रत्यर्थी के अपराध या निर्दोषता के संबंध में निष्कर्ष, जैसा कि मामला हो, उसके खिलाफ दर्ज किया जा सकता है। प्रत्यर्थी को शिकायत के साथ आगे बढ़ने की भी स्वतंत्रता होगी जहां तक मामला आईपीसी की धारा 500 के तहत दंडनीय अपराध से संबंधित है, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि अदालत के निष्कर्षो के आलोक में ऐसा करने की कोई गुंजाइश है या नहीं। प्रत्यर्थी के विरुद्ध मुकदमे के समापन पर रिकॉर्ड किया जा सकता है।

17. परिणामस्वरूप, ये अपीलें स्वीकार की जाती है और मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा पारित 3 फरवरी, 2003 के आदेश और उच्च न्यायालय द्वारा 26 फरवरी, 2008 को पारित आदेश को रद्द कर दिया जाता है। प्रत्यर्थी द्वारा दायर की गई आपराधिक शिकायत संख्या 180/1/2002 को प्रत्यर्थी के खिलाफ दायर आरोप-पत्र को जब्त करने वाले सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया जाएगा, ऐसे आदेशों के लिए जो न्यायालय मुकदमे के समापन पर उचित समझे। उत्तरदाता ऊपर दी गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए।

डी.जी. अपील स्वीकार।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल सुवास की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी सुश्री रेणुका शर्मा, आर.जे.एस. द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण, यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।